ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। उपयोग अन्तर में लाने को आचार्यदेव कहते हैं, मति–श्रुत का उपयोग, अर्थात् उसका राग छूटे तो उपयोग अन्दर आये न? राग छूटे बिना उपयोग अन्दर आता नहीं।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–२ B

प्रश्न :–: ..आप समजायेंगे? अथवा सर्वथा पर को नहीं जानता ऐसा कहें तो बराबर है कि नहीं?

समाधान :– छठवी गाथा में कहाँ ऐसा आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव के प्रवचन में आता है, पर को जानता नहीं।

समाधान :– और दूसरी गाथा में? प्रवचन में आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव की कैसेट है उसमें एक वाक्य आता है कि पर को जानता नहीं। और दूसरी गाथा में अमृतचंद्राचार्य की टीका है उसमें लिखा है कि पर को जानता नहीं ऐसा यदि मानेगा तो तुझे मिथ्यात्व है।

समाधान :– सब अपेक्षा हैं। पर को जानता नहीं यानी पर में एकत्व नहीं होता। पर को जानता नहीं यानी कि स्वयं का जो ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है। पर में एकत्व होता नहीं यानी कि वह पर को जानता नहीं, लेकिन अपना ज्ञान परिणमित होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। और पर को नहीं जानता (ऐसा मानेगा तो) मिथ्यात्व है। ज्ञान स्वभाव खुद का ही है तो ज्ञान सर्व को जानता है। ज्ञान ऐसा नहीं है कि पर को नहीं जाने। ज्ञान तो लोकालोक को जानता है। इसलिये ज्ञान जानता नहीं ऐसा माने कि.... छह द्रव्य जगत में है, द्रव्य–गुण–पर्याय, दूसरे अनंत द्रव्य हैं सर्व को ज्ञान जानता तो है। इसलिये नहीं जानता है ऐसा सर्वथा माने तो–तो मिथ्यात्व है। ज्ञान का स्वभाव है जानना।

नहीं जानता है अर्थात् पर में एकत्व होता नहीं। स्वयं ज्ञानरूप ही रहता है। ज्ञान, ज्ञान का स्वभाव है जानना। इसलिये सहज जानता है। ज्ञान स्वयं सहज स्वभावरूप परिणमता है, ज्ञानरूप। वह ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा वहाँ कहना है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय को जानता नहीं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये।

प्रश्न :– छठवीं गाथा में किस अपेक्षासे वहाँ कहना चाहते हैं? पर को जानता नहीं है तो वहाँ कौनसी अपेक्षा है?

समाधान :– अपेक्षा यह है कि ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान ज्ञान को जानता है,

परज्ञेय उसमें आता नहीं। ज्ञान उसमें एकत्वबुद्धि होकर उसमें घूसकर, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में घूसकर ज्ञान नहीं जानता। ज्ञान भिन्न रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञान में रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। ऐसे। दूसरे ज्ञेय में एकत्व होकर, उसमें घूसकर नहीं जानता। ज्ञान का स्वयं का स्वभाव ही है कि स्वयं स्वयं को और अन्य को जाने। अर्थात् ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा उसका अर्थ है। सर्वथा ज्ञेय को जानता ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। सर्वथा नहीं जानता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

प्रश्न :- राग जीव की पर्याय में होता है और समयसार में राग को पुद्गल कहते हैं। जीव में चेतनगुण है और अचेतन गुण नहीं है तो अजीव किस हिसाबसे राग को कहते हैं?

समाधान :- राग है वह अपना स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव तो वीतराग है। राग उसका स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उस राग को अजीव कहा। लेकिन खुद की पर्याय में होता है इसलिये उसे चेतन कहा। चैतन्य की पर्याय में होता है। अपने पुरुषार्थ की मंदतासे होता है। इसलिये वह जीव की विभाविक पर्याय है। लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उसे अजीव कहा। उसकी दोनों अपेक्षा समझनी चाहिये। अजीव यानी अजीव ही नहीं है, तो राग कहाँ होता है? राग अजीव थोड़े ही करता है। राग अपनी पर्याय में होता है। लेकिन अपनी पर्याय में होता है परंतु वह विभाव है, स्वयं का स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है इसलिये उसे अजीव कहा। तू तेरे द्रव्य स्वभाव को देख तो उसमें कोई राग नहीं है। तो यह राग कहाँसे आया? कि कर्म के निमित्तसे हुआ है इसलिये राग कर्म की ओर का है। इसलिये उस अपेक्षासे वह अजीव है ऐसा कहा। राग कुछ जानता नहीं, जाननेवाला तो आत्मा है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये वह अजीव है। इसप्रकार अपेक्षासे अजीव कहा है।

उसमें भी अपेक्षासे पर को नहीं जानता ऐसा कहा है। एकत्वबुद्धि करके नहीं जानता। उसमें राग और एकत्वबुद्धि करता है इसलिये वह ज्ञेय में जाता नहीं, भिन्न रहकर जानता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। सर्वथा नहीं समझ लेना। किस अपेक्षासे कहा है (उसे समझना)। राग को सर्वथा अजीव कहो तो करना क्या रहा? कुछ रहा नहीं। मोक्षमार्ग, पुरुषार्थ करना, मोक्षमार्ग प्रगट करना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय प्रगट करना, राग छोड़कर वीतराग स्वभाव प्रगट करना (यह नहीं रहता)। राग अजीव होता तो करना क्या रहा? तो-तो स्वयं को वीतरागता का वेदन होना चाहिये। वीतरागता का वेदन तो होता नहीं। वीतराग तो हो नहीं गया। उसका वेदन कहाँ होता है? राग अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न होओ। तेरा स्वभाव ज्ञायक है, ऐसा कहना है। तू तेरे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर। आत्मा का स्वभाव भिन्न है। तू ज्ञायक है और यह राग तेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार भिन्न होओ। यदि राग की पर्याय ही नहीं हो ऐसा तो है नहीं, तो-तो वीतरागदशा

का वेदन होना चाहिये। सर्वथा अजीव और जड़ हो तो। सर्वथा पर को जानता नहीं हो, ज्ञान जाने ही नहीं तो लोकालोक का ज्ञान नहीं होगा। सर्वज्ञ स्वभाव केवलज्ञान जो लोकालोक को जानता है वह जानेगा ही नहीं। जाने ही नहीं, स्वयं को ही जाने तो ये सब जो भगवान की वाणी में आता है कि जगत में छह द्रव्य हैं, नौ तत्त्व हैं, ऐसी बात आती है। अनन्त द्रव्य हैं, जीव अननन्त, पुद्गल अनन्तान्त, स्वर्ग, नर्क इत्यादि अनेक प्रकार की बात आती है, वह सब भगवान की वाणी में आता है। वह सब ज्ञान ही नहीं हो। पर को जानता नहीं हो तो केवलज्ञान ही नहीं रहे, सर्वज्ञता ही नहीं रहे, कुछ रहता नहीं। सर्वथा नहीं जानता हो तो। केवलज्ञान नहीं रहता। स्वयं स्वयं को ही जाने, दूसरे द्रव्य को कोई जाने ही नहीं।

जगत में सूक्ष्म परमाणु है, उसके द्रव्य–गुण–पर्याय की सूक्ष्मता भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं। भूतकाल की बात, वर्तमान की, भविष्य की बात वह सब कोई जाने ही नहीं। यदि ज्ञेय को जानता नहीं हो तो। कोई पूर्व की बात जाने नहीं, स्वयं कुछ जाने ही नहीं। यदि सर्वथा नहीं जानता हो तो।

प्रश्न :– १८ गाथा में कहते हैं कि आबालगोपाल सर्व को सदा काल आत्मा ही जानने में आता है तो हम को क्यों जानने में नहीं आता?

समाधान :– आबालगोपाल सर्व जानते हैं वह जानना अलग है और प्रगटरूपसे जानना वह अलग है। प्रगटरूपसे भेदज्ञान होकर जो जानना वह (अलग है)। ज्ञायक को पहिचानकर जाने। आबालगोपाल जानते हैं यानी कि ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञानरूप ही रहा है। आबालगोपाल को ज्ञानस्वभाव ज्ञानरूप ही है और जड़ जड़रूप ही है। वह खुद जड़ नहीं हो गया। आबालगोपाल को ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है। ज्ञान ज्ञानरूप है उसे पहिचान तो प्रगट होगा। आबालगोपाल सर्व को ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है, अन्यरूप हुआ ही नहीं। भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। जानने में आ रहा है अर्थात् ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है। उस रूप ही उसकी परिणति है। लेकिन उसका वेदन कहाँ है? प्रगट कर तो वेदन हो। जड़ नहीं हुआ है। ज्ञान ज्ञानरूपसे आबालगोपाल सर्व को है। ज्ञायक ज्ञायकरूप ही रहा है, उस रूप ही जानने में आता है। जानने में आता है वह प्रगट नहीं जानने में आता–वेदन में नहीं आ रहा है।

आचार्यदेव तो करुणा करके कहते हैं कि आबालगोपाल सर्व को जानने में आ रहा है, तू क्यों नहीं जानता है? ऐसा कहते हैं। वे तो करुणा करते हैं कि आबालगोपाल सर्व को वह भगवान आत्मा जानने में आ रहा है यानी उस रूप ही रहा है, तू देख तो सही, ऐसा कहते हैं। उसका तूझे वेदन हो रहा है ऐसा नहीं कहते हैं। तू उसका वेदन कर, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न :– समयसार में कहते हैं कि द्रव्य और पर्याय दोनों का क्षेत्र भिन्न है, प्रदेश भिन्न है। तो किस अपेक्षासे ऐसा कहते हैं कि द्रव्य और पर्याय का क्षेत्र–प्रदेश भिन्न है?

समाधान :- बिलकूल प्रदेश भिन्न होते नहीं। ऐसा हो तो पर्याय भिन्न और द्रव्य भिन्न हो जायेगा। पर्याय भिन्न हो जायेगी और द्रव्य भिन्न हो जायेगा। द्रव्य की पर्याय है, पर्याय कोई बिना आधार लटकती नहीं। बिना द्रव्य की पर्याय किसके आधार होगी? पर्याय मात्र कोई भिन्न वस्तु है कि जगत में मात्र पर्याय हो? ऐसा तो कुछ है नहीं। द्रव्य के आधारसे पर्याय होती है। पर्याय बिना का कोई द्रव्य होता नहीं। लेकिन जब द्रव्य पर दृष्टि करता है कि मैं तो चैतन्यद्रव्य ही हूँ, इसप्रकार उसकी परिणति को गौण करके मैं द्रव्य शाश्वत हूँ ऐसे दृष्टि करता है, इसलिये पर्याय का जो लक्ष्य है वह गौण हो जाता है। यानी कि पर्याय में दृष्टि की मुख्यता होनेसे पर्याय भिन्न है ऐसा दृष्टि की अपेक्षासे कहते हैं। मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। इसमें कोई पर्याय दिखती नहीं। दृष्टि के विषय में दिखाई नहीं देती इसलिये है ही नहीं ऐसा कहते हैं। उसका क्षेत्र भिन्न है ऐसा कहते हैं। वह कहाँ दिखाई देती है? इसलिये नहीं है ऐसा कहते हैं। और बिना पर्याय का द्रव्य कभी होता ही नहीं। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। पर्याय बिना का द्रव्य हो तो वेदन किसको होगा? दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब पर्याय ही प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन होता है वह पर्याय है, ज्ञान होता है वह पर्याय है-सम्यग्ज्ञान, चारित्र होता है वह पर्याय है। उसका वेदन किसको होगा? बिलकूल भिन्न हो, सर्वथा प्रदेश भिन्न हो तो वेदन किसको होगा ? जिसका वेदन नहीं है, जो बिलकूल भिन्न है उसे प्रगट करने का फिर कोई प्रयोजन नहीं रहता है। उसकी अपेक्षा मुख्यता, गौणता को समझना चाहिये कि किस अपेक्षासे है, किस अपक्षासे नहीं है। दृष्टि के विषय के ज़ोर में मुझे पर्याय कहीं भी दिखाई नहीं देती, अन्दर द्रव्य में देखता हूँ तो। इसलिये पर्याय का क्षेत्र भिन्न है ऐसा कह देता है।

प्रश्न :- दृष्टि की अपेक्षासे तो पर्याय भिन्न है न, माताजी?

समाधान :- पर्याय भिन्न है अर्थात् वहाँ वस्तुभेद नहीं समझना, वस्तुभेद नहीं समझना। वस्तु भिन्न नहीं समझनी, उसकी गौणता समझनी। एक इन्सान अपने सामने देखे कि मैं ही मुझे दिखाई देता हूँ, दूसरे लोग हो तो कहे दूसरे है ही कहाँ? मैं ही हूँ, अन्य कोई है नहीं। इस घर के अन्दर मैं ही दिखाई देता हूँ और यह सब मैं ही हूँ, दूसरा कुछ है ही कहाँ? इसप्रकार स्वयं पर नज़र गई इसलिये दूसरा कुछ है ही नहीं ऐसा कहे तो क्या और कोई नहीं है? द्रव्य पर दृष्टि गई तो उसने पर्याय को गौण की। यहाँ तो मनुष्य भिन्न ही है, लेकिन यहाँ तो अंश है वह द्रव्य का अंश है।

प्रश्न :- वेदन पर्याय का है तो वेदन द्रव्य का नहीं है, ऐसा?

समाधान :- वेदन भले ही पर्याय का हो लेकिन पर्याय और द्रव्य एक ही है, इसलिये द्रव्य का भी वेदन कह सकते हैं। आत्मा की अनुभूति हुई ऐसा कहते हैं, पर्याय की अनुभूति हुई ऐसा नहीं। ऐसे कहते हैं। वीतरागता की अनुभूति हुई। वीतरागस्वरूप आत्मा है, सम्यग्दर्शनरूप आत्मा है, ज्ञानरूप आत्मा है ऐसा कहते हैं। चारित्र की पर्यायरूप आत्मा है ऐसा कहते

हैं। वह कोई भिन्न है? वेदन यानी वेदन करनेवाला भिन्न और द्रव्य भिन्न रह गया, ऐसा कुछ है? अनादिथी वेदन नहीं है। पर्याय प्रगट हो यानी वेदन होता है लेकिन वेदन करनेवाली पर्याय भिन्न और द्रव्य भिन्न रह गया। राग की पर्याय हो तो राग की पर्याय हुई, लेकिन रागरूप आत्मा परिणमित होता है ऐसा भी कहते हैं। राग आत्माने किया, क्रोध आत्माने किया ऐसा भी कहते हैं। राग पर्यायने किया, क्रोध पर्यायने किया, ऐसे स्वयं उसका आश्रय है, आत्मा कोई भिन्न लटकता नहीं। जैसे पर्याय लटकती नहीं, वैसे पर्यायसे बिलकूल अलग नहीं रहता, द्रव्य बिलकूल भिन्न नहीं रह जाता।

प्रश्न :- जैसे सुख-दुःख का वेदन होता है वैसे ज्ञान का वेदन (होता है)?

समाधान :- जैसे सुख-दुःख का वेदन होता है वैसे ज्ञान का भी वेदन होता है। ज्ञान उसकी अपक्षासे, ज्ञान ज्ञानरूपसे जाननेरूप उसका वेदन है। ज्ञान का वेदन प्रगट हो तब होता है। अनादिसे उसको कोई ज्ञान का वेदन नहीं है। ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमित हुआ। ज्ञायक ज्ञातारूप उसका वेदन है। प्रगट हो तब। बिना प्रगट हुए उसका कहाँ वेदन है? ज्ञाता स्वयं ज्ञातारूप परिणमे तो उसे ज्ञाता ही हूँ, वह वेदन अलग है। सुख का वेदन वह तो राग का है, सुख-दुःख का (वेदन) है वह तो राग का है। आचार्यदेवने करुणा करके कहा कि आबालगोपाल सभी भगवानरूप परिणमित हो रहे हैं, तो सब तर्क उठते हैं।

प्रश्न :- शास्त्र में ऐसे कथन आते हैं, इसलिये..

समाधान :- आबालगोपाल सभी ज्ञानरूप हो ही रहे हैं, तू देखे, तू स्वयं ही है। देख तो सही, ऐसा कहते हैं। आबालगोपाल हो ही रहे हैं तो क्यों अनुभव में नहीं आता? लेकिन आचार्यदेव कहते हैं कि तू ज्ञानस्वरूप हो रहा है। तू तेरे पास है, तू क्यों नहीं देखता? ऐसा कहते हैं, उनका कहने का आशय यह है।

..अनुभव में आ रहा है यानी प्रगट अनुभूति हो रही है ऐसा नहीं कहना है। तूझे प्रगट नहीं है, लेकिन अनुभव में आ रहा है। इसलिये तेरे लिये आसान है, देख तो सही, ऐसा कहते हैं। आसान है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकता की अनुभूति .. उसही प्रकार आबालगोपाल को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकता अनुभव में आ रही है।

समाधान :- वह अनुभूति कही वह दूसरी अपेक्षासे कही है। ऐसा आत्मा तूझे दर्शाया, तू देख, तू स्वयं ही है।

प्रश्न :- सिद्धो वर्ण समाम्नाय।

समाधान :- हाँ, सिद्धो वर्ण समाम्नाय। उमराला में बचपन में वह (प्रथम शब्द सुना था)। भगवान वीतराग हुए, राग-द्वेष छूटकर भगवान हुए। वह भगवान बाहर में, आत्मा भगवान अन्दर है। उस भगवान को पहिचाने तो भगवान हो सकता है, पहचाने बिना नहीं हो सकता।

प्रश्न :- माताजी! समवसरण कैसा होता है?